-: श्रीगणेशाय नमः :-

व्रतोपवासादि में ग्राह्य धर्मनिबन्ध

श्रीरामजन्मभूमिशिलापूजनाचार्य पण्डित गङ्गाधर पाठक

धर्माय धर्मशास्त्राय धर्माचाररताय च । धर्मरक्षाप्रवृत्ताय धर्मज्ञाय नमो नमः ।।

''वेदोऽखिलो धर्ममूलम्'' विभिन्न देश-काल-शाखा-प्रशाखादि के सञ्चालन में सुप्रवृत्त धर्मशास्त्रीय प्रबन्धों का मूल भगवान् वेद हैं । वेदसिद्ध मन्वादि धर्मशास्त्रों एवं कृत्यकल्पतरु आदि महनीय धर्मनिबन्धों ने पूर्वकाल से ही सनातन परम्परा को सुव्यवस्थित बनाए रखा है । महर्षि पराशर (१।२०) ने कहा है कि प्रत्येक कल्प के प्रारम्भ में ब्रह्मा, विष्णु, शिव और श्रुति, स्मृति, सदाचार के प्रवर्त्तक ऋषिगण अवतार ग्रहण करते हैं-

कल्पे कल्पे क्षयोत्पत्तौ ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । श्रुतिस्मृतिसदाचारनिर्णेतारश्च सर्वदा ।।

श्रुत्यनुकूला स्मृति, श्रुतिस्मृत्यनुकूल सदाचार और श्रुतिस्मृतिसदाचारानुकूल शिष्टात्मप्रियत्व ही धर्म में प्रमाण होते हैं । पुनः ''धर्मशास्त्रविरोधे तु युक्तियुक्तो विधिः स्मृतः'' धर्मनिर्णय में धर्मशास्त्रीय विरोध उपस्थित होने पर सद्युक्ति का आलम्बन लेकर धर्म का निर्णय करना चाहिए; अन्यथा ''युक्तिहीनविचारे तु धर्महानिः प्रजायते'' युक्तिहीन विचार में धर्महानि की सम्भावना बन जाती है । कलिवर्ज्यादि प्रकरणों में कदाचित् स्मृतियाँ भी श्रुतियों पर शासन कर देती हैं । महाभारत अनुशासनपर्व के उमा-महेश्वरसंवाद में बहुविध धर्मों का व्याख्यान द्रष्टव्य है-

धर्मा बहुविधा लोके श्रुतिभेदमुखोद्भवाः । देशधर्माश्च दृश्यन्ते कुलधर्मास्तथैव च ।।
जातिधर्मा वयोधर्मा गुणधर्माश्च शोभने । शरीरकालधर्माश्च आपद्धर्मास्तथैव च ।।
एतद्धर्मस्य नानात्वं क्रियते लोकवासिभिः ।।

ये देशधर्म, कुलधर्म, जातिधर्म, वयोधर्म, गुणधर्म, शरीरधर्म, कालधर्म और आपद्धर्म सत्ययुग में यथावत् अनुष्ठित होते हैं । त्रेतादि में क्रमशः क्षीण होते होते कलि के अन्त में विनष्टप्राय हो जाते हैं । अतः अन्यनिन्दापेक्षया स्वयमेव धर्मदृढ़ होकर यथासाध्य धर्म का पालन करते रहना चाहिए । पराशरजी ने युगधर्म का निरूपण करते हुए १।३३ में कहा है-

युगे युगे च ये धर्मास्तत्र तत्र च ये द्विजाः । तेषां निन्दा न कर्तव्या युगरूपा हि ते द्विजाः ।।

जिस जिस युग में जो जो धर्म हैं और वहाँ जो जो ब्राह्मण हैं; उनकी निन्दा नहीं करनी चाहिए । क्योंकि ब्राह्मण भी तो युगस्वभाव के अनुरूप ही होते हैं । देश-काल-परिस्थितिवशात् मन्वादि धर्मशास्त्रों का आश्रय लेकर धर्म और धार्मिक समाज को सुव्यवस्थित बनाए रखना ही धर्मज्ञों का कर्तव्य होना चाहिए । इसकी व्यवस्था बनाते हुए पराशरस्मृति की टीका में माधवाचार्यजी लिखते हैं- ''युगभेद से जो धर्म में भेद बतलाया है वह धर्म के स्वरूप में नहीं; प्रकार में है ।'' अर्थात् धर्म के यथोक्त लक्षण या स्वरूप में भेद नहीं है; किस प्रकार के देश-कालादि में किस प्रकार से अमुकामुक धर्मों का अनुष्ठान किया जाय, इसमें भेद हो जाता है । जहाँ उपर्युक्त देश-काल-जात्यादि के धर्मवैविध्य पुरस्कृत होते हैं ।

एतदर्थमेव धर्मशास्त्र-पुराणों के धर्मनिर्णयवैविध्य को सुव्यवस्थित रखने के लिए देश-कुलादिधर्मविशेषज्ञ मनीषियों ने कृत्यकल्पतरु, धर्मरत्न, नृसिंहप्रसाद, निर्णयामृत, निर्णयसिन्धु और कृत्यसार आदि का सुप्रणयन किया । अमुकामुक देश-शाखादि से बँधे ये बृहल्लघु धर्मनिबन्ध अतिशय विलक्षण होते हुए भी पूर्णतः सार्वदेशिक शास्ता नहीं हो सकते ।

जब मनुसंविधान के रहते भी याज्ञवल्क्य, पराशरादि की आवश्यता पड़ सकती है तो इन विविध धर्मनिबन्धों की बात ही क्या । इतना ही नहीं, देश-शाखादि के भेद से मन्त्रब्राह्मणात्मक साक्षात् भगवान् वेद भी सर्वशास्ता के रूप में मान्य नहीं होते; तब देश-काल-बुद्धिविशिष्ट प्रबन्धकों के निर्णयामृत, निर्णयसिन्धु, धर्मसिन्धु आदि को पूरे संसार का अव्याहत शासक घोषित करते रहना हास्यास्पद ही है । क्षेत्रपरम्परादिभेद से ही ये सभी सम्मान्य हैं ।

इसको समझने के लिए अमुकामुक धर्मनिबन्धों का विशेष विश्लेषण न भी करें तो एक पक्ष पर किञ्चिद् विचार कर लेना आवश्यक है । पुराणेतिहासों ने दशविध ब्राह्मणों के मुख्यतः दो विभाग बताये हैं- पञ्च गौड़ और पञ्च द्राविड़ । स्कन्दपुराण सह्याद्रिखण्ड उत्तरार्द्ध के प्रथम अध्याय में ही भगवान् शिव ने स्पष्ट किया है-

सारस्वताः कान्यकुब्जा उत्कला मैथिलाश्च ये । गौडाश्च पञ्चधा चैव पञ्च गौडाः प्रकीर्तिताः ॥

द्राविडाश्चैव तैलङ्गाः कर्नाटा मध्यदेशगाः । गुर्जराश्चैव पञ्चैते द्राविडाः पञ्च कथ्यते ॥

इन दोनों श्लोकों के पाठभेद भी हैं-

सारस्वताः कान्यकुब्जा गौडमैथिलकोत्कलाः । पञ्च गौडा इति ख्याता विन्ध्यस्योत्तरवासिनः ॥

कार्णाटाश्चैव तैलङ्गा गुर्जरा राष्ट्रवासिनः । आन्ध्राश्च द्राविडाः पञ्च विन्ध्यदक्षिणवासिनः ॥

पञ्च गौड़- यानी सारस्वत- पञ्जाब (सरस्वती नदी का तटवर्ती प्रदेश), कान्यकुब्ज- पञ्चाल (कन्नौज), गौड़- बङ्गदेश, उत्कल- उड़ीसा और मिथिला के ब्राह्मण पञ्च गौड़ कहे जाते हैं । पाँचों गौड़ प्रदेशों के आचार, व्यवहार एवं संस्कृति-संस्कारों में बहुत कुछ समानताएँ रही हैं । इनमें परस्पर विचारों के आदान-प्रदान के फलस्वरूप ही बङ्गाल के प्राचीन काव्य को सामूहिक रूप से पाञ्चाली (अर्थात् कान्यकुब्ज देश से सम्बन्धित) कहा जाता था और पञ्जाब के शकसंवत् का प्रचार भी बङ्गाल में हुआ । यह भी पुरानी अनुश्रुति है कि कान्यकुब्ज (पञ्चाल) से बुलाए हुए ब्राह्मणों एवं कायस्थों ने गौड़ (बङ्ग) देश जाकर बङ्गाल की संस्कृति को आर्यदेश की संस्कृति से अनुप्राणित किया था । इसी प्रकार मिथिला के न्यायदर्शन का पठन-पाठन नवद्वीप या नदिया (बङ्गाल) में पहुँच कर फूला-फला और उड़ीसा से तो बङ्गाल का सदा से अभिन्न सम्बन्ध रहा ही है । शक्तिसङ्गम तन्त्र में बङ्गाल से भुवनेश्वर तक के क्षेत्र को सर्वविद्याविशारद गौड़ देश कहा गया है-

वङ्गदेशं समारभ्य भुवनेशान्तगं शिवे । गौडदेशः समाख्यातः सर्वविद्याविशारदः ॥

ग्यारहवीं शती के कृष्ण मित्र ने प्रबोधचन्द्रोदय में अनुपमा राढ़ापुरी को भी गौड़ देश के अन्तर्गत माना है । वर्तमान बर्दवान जिला और उसका दक्षिणी भाग राढ़ क्षेत्र गौड़ देश है । गौड़ देश पर अन्यान्य विश्लेषण भी हैं परन्तु मेरे इस आलेख का उद्देश्य पञ्च गौड़ों के संकीर्ण सांस्कृतिक पार्थक्य को मिटा कर एक करना मात्र है । यद्यपि ''विन्ध्यस्योत्तरवासिनः'' पाठ मानने में थोड़ी समस्या आती है (इससे चेदि, मालव, और बरार के सीमान्तर्वर्ती उत्कल और गोण्डवाना के मध्य का प्राचीन भाग पञ्च गौड़ देश से भिन्न हो सकता है) तथापि विन्ध्यगिरि के उत्तर सरस्वती नदी का प्रवाहक्षेत्र कुरुक्षेत्र, कन्नौज, कानपुर, प्रयाग, अवध क्षेत्र, मिथिला, बङ्गाल और उड़ीसा एवं मध्यप्रदेश का मध्यवर्ती भाग पञ्च गौड़ों के क्षेत्र हैं । पाठान्तरीय श्लोकस्थ आन्ध्र-तैलङ्ग का पार्थक्य भी विचारणीय ।

निष्कर्षतः विन्ध्यगिरि के उत्तर कुरुक्षेत्र से लेकर बङ्ग देश की पूर्वी सीमा तक के विभिन्न स्थान गौड़ देश हैं । सारस्वत, कान्यकुब्ज, मिथिला, बङ्गाल और उड़ीसा ये पाँच जनपद ही पूर्वोक्त किसी न किसी एक गौड़ में सम्मिलित थे अथवा उनके अंश समझे जाते थे । इस कारण पञ्च गौड़ कहने से उक्त पञ्च जनपदवासी ब्राह्मणविशेष का बोध होता था । किसी काल में समग्र आर्यावर्त के अधीश्वर का बोध कराने के लिए पञ्चगौड़ेश्वर की मानद उपाधि भी दी जाती थी । मैथिलमनीषी महाकवि विद्यापति के पृष्ठपोषक मिथिलानरेश महाराज शिवसिंह को भी पञ्चगौड़ाधिप उपाधि से विभूषित किया गया था । मध्यकालीन इतिहास में मिथिला और बङ्ग देश का मध्य भाग गौड़ देश के रूप में विशेष प्रसिद्ध था ।

पञ्च द्राविड़- तैलङ्ग, आन्ध्र, कर्नाटक, महाराष्ट्र और गुजरात के ब्राह्मण पञ्च द्राविड़ कहे जाते हैं । द्रविड़- उड़ीसा के दक्षिण-पूर्वी सागर के किनारे रामेश्वरम् तक फैला द्रविड़ देश है । प्राचीन काल में द्रविड़ देश को 'तामिलगम्' कहा जाता था । इसकी सीमा उत्तर में समुद्रतट पर पुलीकट से तिरुपति तक, पूर्व में बङ्गाल की खाड़ी तक, दक्षिण में कन्याकुमारी तक और पश्चिम में माही के कुछ दक्षिण बड़गर के पास तक थी । उस समय मालावार भी तामिलगम् (तामिलनाडु) के अन्तर्गत था । राजेन्द्रचोल के राजत्वकाल में उक्त पाँचों जनपद दक्षिण भारत में विशेष प्रसिद्ध हो गये थे । जिस प्रकार आर्यावर्त में 'पञ्चगौड़' नामक एक विशिष्ट ब्राह्मणसमूह स्थापित हुआ था, उसी प्रकार दक्षिण के ब्राह्मणगण भी 'पञ्चद्राविड़' नामक एक स्वतन्त्र समाज के रूप में गठित हुए । विन्ध्यगिरि के दक्षिण भाग में द्रविड़, आन्ध्र, कर्णाट, महाराष्ट्र और गुर्जर नामक पाँच जनपद उस समय उन्नति के उच्च शिखर पर पहुँच गये थे । दक्षिण के ये पाँच स्थान और उनके अधिवासिगण अन्यान्य वनजातीयों के शीर्षस्थान माने गये हैं । इन पाँच स्थानों की भाषाएँ तामिल, तेलगु, कणाड़ी या कन्नर, मराठी और गुजराती के भेद से स्वतन्त्र हैं । राजा राजेन्द्रचोल को 'पञ्चद्रमिलाधिपति' से सम्मानित किया गया था । राजेन्द्र नाम के चार राजा थे ।

अब पञ्चगौड़ों एवं पञ्चद्राविड़ों के मान्य धर्मनिबन्धों का सामान्य परिचय देखें । पञ्चगौड़ों के लिखे प्रायः सम्पूर्ण उत्तरभारत के नियामक धर्ममहानिबन्धों में अत्यन्त प्रौढ़ और प्रमुख ग्रन्थ श्रीलक्ष्मीधर का बहुभागात्मक सुविस्तृत कृत्यकल्पतरु आदि, श्रीदत्तोपाध्याय का आचारादर्शादि, श्रीचण्डेश्वर का ७खण्डात्मक स्मृतिरत्नाकर एवं कृत्यचिन्तामणि आदि, श्रीरुद्रधर का शुद्धिविवेक आदि, श्रीवाचस्पति मिश्र के ३० से अधिक बृहद् धर्ममहानिबन्ध, श्रीजीमूतवाहन का धर्मरत्न, शूलपाणि का ११खण्डात्मक स्मृतिविवेक, दलपति का १२खण्डात्मक नृसिंहप्रसाद, गोविन्दानन्द की अनेक कौमुदियाँ, रघुनन्दन का २८खण्डात्मक स्मृतितत्त्व, १२खण्डात्मक वीरमित्रोदय (अनेक विद्वानों का सम्मिलित महानिबन्ध । मित्रमिश्र वीरसिंह के प्रधान सभापण्डित थे । वीरसिंह की अनुमति से मित्रमिश्र ने पण्डितों की समिति बनायी और यथाधिकार विषयविभाग कर उनसे लेखन का कार्य कराया । जिनमें सर्वाधिक श्रम धर्माधिकारी मैथिलमनीषी श्रीसदानन्दजी ने किया था । इन्हीं श्रीसदानन्दजी को धर्मशास्त्रीय विषयों का प्रधान अधिकारी जान मित्रमिश्रजी ने इनसे मैथिलकृति 'याज्ञवल्क्यस्मृति' पर टीका लिखने का आग्रह किया और श्रीसदानन्दजी ने प्रौढ़ टीका लिख कर वीरमित्रोदय के नाम से उसे प्रकाशित किया । जिसकी चर्चा वीरमित्रोदयटीका के ''उत्तंसस्तीरभुक्तेरखिलबुधगुरुः श्रीसदानन्दधीमान्'' प्रारम्भिक १६वें श्लोक में प्राप्त है) और अमृतनाथजी आदि के विविध कृत्यसार एवं वर्षकृत्यादि प्रसिद्ध हैं ।

स्वल्पमतान्तर से गौड़देश आर्यावर्त या कश्मीर से पूर्वी बङ्गाल की खाड़ी किं वा असम तक प्राय: सम्पूर्ण पश्चिमपूर्वोत्तरीय भारत उपर्युक्त धर्मनिबन्धों का ही धर्मानुशासनक्षेत्र है । जिनका अतिक्रमण या संक्रमण सही नहीं । सभी गौड़देशीयों को अपनी ग्राम्यपरम्परा का निर्वाह करते हुए विविध व्रत, पर्व, श्राद्ध, सूतक आदि में इन्हीं धर्मप्रबन्धों को पुरस्कृत करना चाहिए । अमुकामुक लेखकों के लेखों में निश्चित ही क्षेत्रीय परम्पराओं का प्रभाव रहता है । अत: सभी गौड़देशवासियों को अन्यों का यथोचित सम्मान करते हुए अपने गौड़देशीय धर्मनिबन्धों का आश्रय लेना चाहिए । काश्मीरियों के 'रणवीरव्रतरत्नाकर' आदि भी मान्य हैं ।

पञ्चद्राविड़ों के धर्मनिबन्धों में हेमाद्रि का विपुलकाय चतुर्वर्गचिन्तामणि, माधवाचार्य का पराशरमाधव, दक्षिण के वल्लाटनाथ का निर्णयामृत, विश्वेश्वर भट्ट के मदनपारिजातादि, नारायण भट्ट के प्रयोगरत्नादि, कमलाकर भट्ट के निर्णयसिन्धु आदि, नीलकण्ठ भट्ट का भगवन्त भास्कर, देवण भट्ट की स्मृतिचन्द्रिका, अनन्तदेव का स्मृतिकौस्तुभ, नागोजि भट्ट के अशौचनिर्णयादि, काशीनाथ उपाध्याय (महाराष्ट्र) का धर्मसिन्धु, वैद्यनाथीय स्मृतिमुक्ताफल, मदनरत्न, विधानपारिजात, कालमाधव आदि पञ्चद्राविड़ों के धर्मनियामक मान्य निबन्ध हैं ।

अब काशी, अयोध्या, मिथिला, मथुरा आदि उत्तरभारत एवं दक्षिण में प्रचलित कुछ धर्मनिबन्धों के आभ्यन्तर प्रकरण पर विचार करें । उत्तर की परम्परा में कृष्णपक्ष और शुक्लपक्ष के मासक्रम से व्रतनिर्णय एवं पञ्चाङ्गों का निर्माण होता है एवं दाक्षिणात्य द्राविड़ों में शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष के क्रम से । उत्तर के धर्मनिबन्धों एवं पञ्चाङ्गों में भाद्रकृष्णाष्टमी में कृष्णजन्म होता है तो दक्षिण के धर्मनिबन्धों में श्रावणकृष्णाष्टमी में । यहाँ भाद्र और श्रावण में कालभेद नहीं है, केवल मासक्रमभेद है । गौड़ों के कृष्णादिक्रम में पहले भाद्रकृष्णपक्ष तब भाद्रशुक्लपक्ष एवं द्राविड़ों की परम्परा में श्रावणशुक्लपक्ष के बाद श्रावणकृष्णपक्ष होने से गौड़ों का भाद्रकृष्णपक्ष ही द्राविड़ों का श्रावणकृष्णपक्ष कहलाता है । अत: द्राविड़ों की श्रावणकृष्णाष्टमी ही गौड़ों की भाद्रकृष्णाष्टमी होती है ।

उदाहरण के लिए दो-चार प्रचलित धर्मनिबन्धों के कृष्णजन्माष्टमी प्रकरण मात्र को देखें । शुक्लादिक्रमेण मास को माननेवाले दक्षिण के निर्णयामृतकार ने लिखा है- ''अथ श्रावणे मासि महाविष्णोरष्टमावतारस्य श्रीकृष्णदेवस्य जन्माष्टमी निर्णीयते'', काशीस्थ निर्णयसिन्धुकार ने कुछ समझौता का प्रयास तो किया है परन्तु ''गौडास्तु निशीथ एव रोहिणीयोगे जयन्ती नान्यथेत्याहु: । तन्न । 'वासरे वा निशायां वा' इति विरोधात् । योगविशेषात् गुणात्फलमित्यन्ये । तेऽप्यकरणे दोषश्रुतेरुपेक्ष्या:'' स्पष्ट ही गौडमत की उपेक्षा की है । यद्यपि ये आगे विचारान्तर में लिखते हैं- ''मदनरत्ननिर्णयामृतगौडमैथिलमतेऽप्येवम्'' यहाँ उन्होंने गौड़ एवं पञ्चगौड़ान्तर्गत मैथिल का पृथक् प्रयोग किया है, इससे अनुमान होता है कि वे गौड़देश से केवल बङ्गप्रदेश को ले रहे हों । इसी प्रकरण में भट्टजी ने निम्बार्कमत को हेय बताया है । धर्मसिन्धु के संकष्टचतुर्थीनिर्णय में ''श्रावणकृष्णचतुर्थ्यां व्रतं कार्यम्'' यहाँ शुक्लादिमास के अनुसार श्रावणकृष्णपक्ष लिखा है, यही कृष्णादिमास के अनुसार भाद्रकृष्णपक्ष होता है । स्मृत्यर्थसार, हेमाद्रि, माधव, राघवेन्द्र, भट्टोजि दीक्षित, नागोजि भट्ट के तिथिनिर्णय में ''श्रावण्यमावास्यायां कुशग्रहणमुक्तम्'' लिखा है । उपलब्ध द्राविड़ धर्मनिबन्धकारों ने इसी पक्ष का आश्रय लिया है । उद्धरण के रूप में तो ऐसे प्रमाणवचन पञ्चगौड़ीय निबन्धकार भी लिखते हैं, परन्तु अपने वाक्य कृष्णादिक्रम से लिखते हैं ।

अब पञ्चगौड़ों के प्रचलित कुछ धर्मशास्त्रीय निबन्धों को देखें । कृत्यसारसमुच्चय में उभय पक्ष की चर्चा करते हुए गौड़ीय परम्परानुसार ''भाद्रकृष्णाष्टम्यां कृष्णजन्माह'', रुद्रधरीय वर्षकृत्य में ''भाद्रकृष्णाष्टम्यां श्रीकृष्णपूजनोपवासव्रतं कुर्यात्'', वाचस्पति मिश्र के वर्षकृत्यतरङ्ग में, रजे मिश्र के तिथिनिर्णय में, कृत्यशिरोमणि में, विविध वर्षकृत्य में, रघुनन्दन के तिथितत्त्व में, जीमूतवाहन के कालविवेकादि गौड़ीय निबन्धों में ''भाद्रकृष्णाष्टम्यां श्रीकृष्णजन्म'' का क्रम है । कई गौड़ीय प्रदेशों में प्रचलित 'जीवत्पुत्रिकाव्रत' की चर्चा द्राविड़ निबन्धकार हेमाद्रि ने 'पुत्रीयव्रत' तो किसी अन्य ने 'जिताष्टमी' के नाम से की है; परन्तु 'निर्णयामृत', 'निर्णयसिन्धु' और 'धर्मसिन्धु' तो सर्वथा गौण हैं । कई गौड़ीय प्रदेशों में बृहद्रूपेण प्रचलित 'छठपर्व' की चर्चा उक्त द्राविड़ निबन्धकार नहीं करते, गौड़ों में प्रायः अप्रचलित 'वह्निषष्ठी' की करते हैं । ऐसे अन्यान्य भी बहुत से पञ्चगौड़ीय प्रकरण हैं, जिनकी चर्चा इन द्राविड़ निबन्धकारों ने नहीं की हैं; उत्तरभारत के सम्पादकों ने टिप्पणी में 'जीवत्पुत्रिका' या 'छठ' आदि की चर्चा कर दी हैं । 'जीवत्पुत्रिका' और 'छठव्रत' आदि तो मिथिला, बङ्गादि के अतिरिक्त काशी, अयोध्यादि के पञ्चाङ्गकार भी देते हैं; निर्णयसिन्धु आदि में इन व्रतों की अनुपलब्धि से काशी आदि के पञ्चाङ्गकारों का आधार धर्मनिबन्ध कौन सा है ? गौड़ेतर कोई अन्य नहीं ।

यद्यपि इस लेख में अन्यान्य गम्भीर विषयों का उभयविध विश्लेषण इष्ट नहीं, तथापि सूतक-श्राद्धादि के कई ऐसे प्रकरण हैं, जहाँ गौड़-द्राविड़ों के शास्त्र और परम्पराभेद द्रष्टव्य हैं । ये कुछ सन्दर्भ मैंने केवल उत्तर एवं दक्षिण के परम्पराभेद को दिखाने के लिए रखे हैं । इसमें किसी की गर्हणा नहीं, अपितु सबके द्वारा अपनी परम्परा का आवश्यक सम्मान है । निर्णयसिन्धुकार ने द्राविड़ों में 'शातातप' के अनुसार प्रशस्त मातुलकन्योद्वाह का खुला समर्थन इसलिए भी न किया हो, क्योंकि उनके धर्मनिबन्ध काशी में रचे गए थे और काशी या उत्तर की परम्परा में दक्षिण के एतादृश पक्ष मान्य नहीं हैं; उनके ये सारे धर्मनिबन्ध अस्वीकार्य भी हो सकते थे । जिज्ञासुओं को अपनी गौरवमयी वृद्धपरम्परा का ज्ञान रखते हुए गौड़-द्राविड़ देशों के यथोचित धर्मनिबन्धों का समाश्रय लेना चाहिए ।

शोचनीय सज्जनो ! मेरे उक्त विवेचनों से 'निर्णयसिन्धु', 'धर्मसिन्धु' आदि समर्घ्य महनीय धर्मनिबन्धों का तिरस्कार या बहिष्कार सिद्ध नहीं किये जा सकते; अपितु अपनी कालविजयिनी परम्परा के सम्मान में ही मेरे विचारों का विनियोग सिद्ध है । ज्ञातव्य- वेदों की सहस्राधिक शाखाएँ हैं । एक संस्थान ही नहीं; एक ही व्यक्ति एकाधिक वेदों का विद्वान् होते हुए भी अपने कर्मप्रयोग में अपनी किसी एक शाखा का ग्रहण या उपयोग करते हैं, स्वशाखा में अमुकामुक विधियों के उपलब्ध होने पर अन्यों का ग्रहण नहीं करते । क्या इन्हें स्वशाखेतर सभी वेदों के निन्दक या विरोधी मान लिए जायँ ? नहीं ।

उत्तर की मिथिला में महर्षि याज्ञवल्क्य द्वारा प्रकट हुई शुक्लयजुर्वेद की माध्यन्दिनशाखा, शतपथब्राह्मण आदि देश के अन्यान्य भूभागों में भी पूर्णतः सम्मान्य हैं । दाक्षिणात्य सायणकृत 'शतपथब्राह्मणभाष्य' सर्वत्र समादरणीय है । याज्ञवल्क्यस्मृति की अपरार्क, विज्ञानेश्वरादिकृत कई दक्षिणदेशीय टीकाएँ सर्वत्र सम्मान्य हैं । दक्षिण प्रदेश के आपस्तम्ब, आश्वलायनादि के विविध सूत्रग्रन्थों का हार्दिक सम्मान उत्तर के कृष्णयजुः एवं ऋगादिशाखीय विद्वत्समुदाय करते ही हैं । साथ जीने वाले परममित्र यजुर्वेदी और सामवेदी सज्जन एक-दूसरे की भिन्नशाखीय पद्धति का उपयोग नहीं करते । इसमें वेदों के तिरस्कार की कल्पना भी नहीं की जा सकती ।

अमुकामुक सम्प्रदायों के परमादरणीय भी अन्यों के लिए अन्यों का आदर करते हुए अपने सम्प्रदाय के धर्मविधानों का पालन करते हैं । एक ही महल में साथ रहनेवाले निम्बार्कियों एवं अन्य वैष्णवों के धर्मग्रन्थ पृथक्-पृथक् हैं; समन्वयवादी अदूरदर्शी महाशय इनके कपालवेध और अरुणोदयवेध के भेद से ग्रहण किये जाने वाले एकादशीव्रत मात्र को भी एक कर सकते हैं क्या ? नहीं । तो क्या ये एक-दूसरे का अपमान करते हैं ? नहीं, ये अपनी सत्परम्परा का अवश्यकरणीय सम्मान करते हैं । अब तो प्रपञ्च में फँसे कई सहजीवी दम्पती भी पूछते रहते हैं कि मैं स्मार्त्त हूँ और मेरी पत्नी वैष्णव हैं; दोनों की एकादशी-जन्माष्टमी कब होंगी ! यद्यपि गृहस्थ मात्र के लिए स्मार्त्त वाले व्रतादि ही ग्राह्य होते हैं, तथापि विडम्बनाओं का क्या कहना ।

विभिन्नप्रकार के धर्मशास्त्रीय समालोचनाओं से यही सिद्ध होता है कि पञ्चगौड़ प्रदेश वाले उत्तर के कृत्यकल्पतरु, कृत्यरत्नाकर, कृत्यचिन्तामणि, कृत्यसार, विभिन्न वर्षकृत्य, धर्मरत्न, स्मृतितत्त्व, नृसिंहप्रसाद आदि गौड़ीय धर्मनिबन्धों को अपने व्रतोपवासनिर्णयों का मुख्य आधार माने एवं पञ्चद्राविड़ प्रदेश वाले निर्णयामृत, कालमाधव, मयूख, भास्कर, मुक्ताफल, पारिजात, निर्णयसिन्धु, धर्मसिन्धु, आदि द्राविड़ धर्मनिबन्धों को । इनमें भी विस्तृततम क्षेत्र वाले गौड़ीय एवं द्राविड़ धर्मग्रन्थों में अमुकामुक स्थानीय व्रतादि के लिए अपने क्षेत्रीय परम्परानिबद्ध धर्मनिबन्धों को ग्रहण करे । वस्तुतः यही धर्मशास्त्र का सम्पूर्ण सम्मान होगा । संक्रमण से लाभ नहीं ।

यद्यपि स्वपक्ष की सिद्धि में उपयोगी वचनों को सबने सब पूर्वाचार्यों से लिया है, तथापि अपनी क्षेत्रपरम्परा का प्राबल्य सिद्ध करने में किसी ने कोई समझौता नहीं किया । धर्मनिबन्धों में सहस्राधिक बृहत्तम धर्मग्रन्थ मैथिलगौड़मनीषियों के हैं, द्राविड़ों ने भी बहुसंख्यक धर्मनिबन्ध लिखे हैं, बङ्गगौड़ीय और औत्कलगौड़ीय धर्मनिबन्धों की भी कमी नहीं । यद्यपि इनमें अधिकतम ग्रन्थकारों ने मिथिला और काशी को ही अपनी साधनास्थली बना रखी थी, तथापि मदुक्त तीन गौड़प्रदेशों को छोड़ अन्य गौड़देशीय विद्वानों के धर्मशास्त्रीय निबन्धग्रन्थों की अनुपलब्धता शोचनीय है । अन्यान्य गौड़देशीय नरेशों ने भी द्राविड़विद्वानों से ही कई धर्मनिबन्ध लिखाये हैं । वीरमित्रोदय में श्रीसदानन्दादि द्वादशाधिक विद्वानों ने विभिन्न विषयों का विवेचन किया है । इन विशालतम संग्रहग्रन्थों से अपनी परम्परा के निर्णायक वचनों का ग्रहण कर लेना चाहिए ।

परिशुद्ध हृदय से विशेष विचार करें- आप संकीर्ण विद्वत्समुदाय एक सीमा पर एक साथ रहने वाली मिथिला और काशी की परम्परा को किस आधार पर एक-दूसरे की विरोधिनी सिद्ध करते हैं ? क्या आप मिथिलाभूमि में प्रकट हुए शुक्लयजुर्वेद की माध्यन्दिनशाखा का उपयोग नहीं करते ? आपको 'शतपथब्राह्मण', 'याज्ञवल्क्यस्मृति' और 'याज्ञवल्क्यशिक्षा' आदि से कितना विरोध रहा है ? याज्ञवल्क्यपुत्र कात्यायन के 'कात्यायनश्रौतसूत्र' और 'कात्यायनस्मृति' आदि मैथिलेतर के प्रमाण नहीं हैं क्या ? मिथिला के महामीमांसक शबरस्वामी, कुमारिल, मण्डन, मुरारि, प्रभाकर आदि की 'मीमांसा' के बिना मीमांसासंसार का काम चल सकता है क्या ? क्या आप मिथिला के गौतमन्याय और उदयन के न्यायकुसुमाञ्जल्यादि का उपयोग नहीं करते ? मिथिला के महान् दार्शनिक श्रीमद्वाचस्पति मिश्र की 'भामती टीका' के बिना संसार का कोई प्रबुद्ध वेदान्ती जी सकता है क्या ? स्वामी करपात्रीजी की 'वाचस्पतिमतसमीक्षा' देख किस वेदान्ती का हृदय परमाह्लादित नहीं होगा । महान् वेदज्ञ महामहोपाध्याय मुकुन्दझा बख्शी, 'मन्त्रार्थचन्द्रोदय' नामक वेदभाष्यकर्ता वैदिकवृन्दवन्दित पण्डित दामोदर झा, 'मन्त्रार्थदीपिका' नाम के वेदभाष्यकार महामहोपाध्याय श्रीशत्रुघ्न मिश्र आदि महापुरुष सकल विद्वानों के वन्द्य हैं ।

परमाणुजगत् के कोई भी प्रबुद्ध दार्शनिक मैथिलशिरोमणि महामीमांसक श्रीमद्गङ्गेश उपाध्याय के कणादीय नव्यन्याय 'तत्त्वचिन्तामणि' का चिन्तन किये बिना रह सकते हैं क्या ? यदि आप सनातनशास्त्रप्रेमी हैं तो एक के बिना भी नहीं रह सकते । आपने महर्षि बोधायन और चैतन्य को चित्त से लगाया, संकोच नहीं । मिथिला के बुद्ध, महावीर ने संसार के सनातनियों को धक्के मार जगाया, संकोच नहीं । संसार के सिद्धान्तप्रेमी ज्योतिर्विद् महामहोपाध्याय श्रीमुरलीधर झाजी से दूरी नहीं बना सकते । संसार के एक भी नैयायिक श्रीमान् बच्चा झाजी के 'तत्त्वालोक' से बच नहीं सकते । आप मिथिला की मैथिली श्रीरामप्राणेश्वरी जगज्जननी भगवती जानकी का पदवन्दन किये बिना रह नहीं सकते । मिथिला का लोकोत्तर श्रीसीताराम-विवाहोत्सव पूरे संसार के सज्जनों को मन्त्रमुग्ध कर देता है । आप निश्चयेन ''एते वै मैथिला राजन्नात्मविद्याविशारदा:'' का गान करने में संकोच नहीं करते । आप ब्रह्मवेत्ता विदेह को परमहंसशिरोमणि भगवान् श्रीशुकदेव का गुरु बताने में गर्व का अनुभव करते ही हैं । आप संकीर्णजन कहाँ कहाँ मैथिलों से दूरी बना सकते हैं ? कहीं नहीं । आज भी देश के उच्चतम संस्कृतसंस्थानों में अमुकामुक विषयों के लिए मैथिल विद्वानों का नियुक्तीकरण अनिवार्य है । देश के सनातनी सामन्तों ने मैथिलमनीषियों को अपने राजगुरु एवं राजपण्डित बनाने में गर्व का अनुभव किया है । हाँ; आज के मैथिल अपनी गौरवगाथा से शिथिल होते जा रहे हैं, दु:ख का विषय है ! मैथिलों को अपनी अस्मिता बचाने का प्रयत्न करना चाहिए । आप पश्चिम बढ़ें, ठीक है; परन्तु ध्यान रखें कि पूरब का प्रचण्ड मार्त्तण्डमण्डल भी विशेष पश्चिम जाने पर अस्त को प्राप्त होता है । जिस दिव्यप्रकाश ने आपको देवर्षिपितृलोक तक प्रकाशित किया, उस लोकोत्तर प्रकाश को बचा रखने में ही भलाई है । ''उद्धरेदात्मनात्मानम्'' आप अपना उद्धार स्वयं करने में प्रमाद न करें । आपकी धरोहर आपको ही बचानी है ।

शोचनीयबन्धो ! विगत शताब्दियों में असंकीर्ण मैथिलों ने मैथिलेतर विद्वानों को भी अपने शिक्षागुरु बनाये हैं । काशीवासी शिवस्वरूप महामहोपाध्याय श्रीशिवकुमार शास्त्रीजी महाभाग मैथिलबुधसहित देश भर के विद्वानों के प्रणम्य थे । संसार के तीन पाव व्याकरण पर गर्व से स्वाधिकार घोषित करने वाले महावैयाकरण श्रीदीनबन्धु झा एवं श्रीमधुसूदन ओझाजी आदि इन्हीं महापुरुष के शिष्य थे । मिथिला के सिद्धान्तज्योतिर्विद् महामहोपाध्याय श्रीमुरलीधर झाजी सदृश विद्वान् काशी के गणितज्ञ महामहोपाध्याय श्रीसुधाकर शास्त्रीजी के ऋणी थे । आदि की व्यापकता को देखते हुए सिद्ध होता है कि आधुनिक संकीर्णसमुदाय निश्चय ही शास्त्रों की एक भी गम्भीरविधा से परिचित नहीं हैं । मैथिलमनीषियों ने हजार-बारह सौ वर्षों के अन्तराल में केवल धर्मशास्त्र पर हजारों महान् ग्रन्थरत्न प्रदान किये हैं; अन्य विषयों की चर्चा ही क्या !

आपके अमुकामुक व्रतनिर्णयों को देख-सुनकर आश्चर्य होता है कि आप शास्त्रपरिष्कृत अमुकामुक धर्मनिर्णयों को मात्र इसलिए नहीं मानते कि वे मैथिलविद्वानों के द्वारा मान्य हैं । एतदर्थ भले ही आपको कुछ अशुद्ध श्लोक एवम् असत् कथाओं को प्रसारित करना पड़े । आश्चर्य- पारम्परिक मैथिलों में अव्रात्यवटु का उपनयन संस्कार होता है, इसीलिए मैथिलेतर समुदाय शादी से दो-एक दिन पूर्व शादीसूत्र पहनते हैं क्या ? मैथिलों में सामूहिक विवाहोपनयन नहीं होते, इसीलिए मैथिलेतरबन्धु शादी-जनेऊ के सामूहिक मजे लेते हैं क्या ? मैथिलब्राह्मणों के विवाह में जयमालकृत्य नहीं होते थे (अब तो मैथिल भी भ्रष्ट होते जा रहे हैं), मैथिलेतरों ने इसीलिए इसको गले लगाया क्या ? मैथिलों में विधिवत् नित्य दशगात्र के पिण्डदान होते हैं, इसीलिए मैथिलेतरजन एक ही दिन में सारे पिण्ड दे देते हैं क्या ?

पुन: मैथिलों के द्वादशाह श्राद्ध में ''पृथक्पाकं पृथक्कुर्यात्पिण्डा देया: पृथक्पृथक्'' का अभी भी पालन हो रहा है, मैथिलेतरों ने इसीलिए ''प्रथमादिद्वादशमासपर्यन्तानि श्राद्धानि एकतन्त्रेण करिष्ये'' की परिपाटी बना रखी हैं क्या ? मैथिलों में माता या कुलगुरु से ही तन्त्रदीक्षा लेने का विधान रहा है, मैथिलेतर महाशयों ने इसीलिए माता या कुलगुरु की दीक्षा का त्याग किया है क्या ? आदि आदि विडम्बनाएँ बहुत विचारणीय हैं .....

बन्धो ! आप मौलिक चिन्तन करते हुए अपने घर-पड़ोसियों से निरर्थक द्रोह का परित्याग कर दें । यदि आप ऐसा कहें कि अमुकामुक धर्मनिबन्धकार भले ही अन्यदेशीय रहे हों परन्तु उन्होंने काशीक्षेत्र में रह कर अपने धर्मनिबन्धों की रचनाएँ कीं, इसलिए वे ही स्वीकार्य हैं । महाशयजी ! मिथिला, बङ्गाल और उत्कल के विद्वानों ने भी काशी को विभूषित किया है; इतिहास ज्ञात करें । ऐसी परिस्थिति में सहस्र योजन दूर वालों से दिखावटी प्यार और साथ जीने-मरने वाले पड़ोसियों से तकरार ! यह कैसी विडम्बना है ?

जहाँ ''इयं मैथिलपरम्परा'', ''इयं बङ्गीयपरम्परा'' आदि का स्पष्ट उल्लेख हो वहाँ आपके कुल, श्रेणी, क्षेत्र, प्रदेश का कुछ अपना प्रामाणिक धर्मनिर्णय उपलब्ध हो तो उसी का सम्मान करें अन्यथा देश, भाषा, भूषा, रहन, सहन, संस्कार, संस्कृति के सामीप्य को सुसज्जित रखने के लिए समानसंस्कृति वाले पड़ोसियों के धर्मनिबन्धों का सम्मान करें । ऐसा करने से स्वत: ही व्रतोपवासों के विभिन्न भेद समाप्त हो जायँगे । पण्डितों एवं पञ्चाङ्गकारों के प्रति लोगों की अनास्था दूर हो जायगी । भेद भी होगा तो गौड़-द्राविड़ीय या साम्प्रदायिक; जिसे पञ्चाङ्गकार ही स्पष्ट कर दिया करेंगे । कुछ क्षेत्रविशेष की स्वकीय लोकपरम्पराओं के पालन में प्रमाद का परित्याग अनिवार्य है । बन्धो ! अब तो बेटी-रोटी भी एक-दूसरे से सम्पृक्त हो रही हैं; आप कोरे पण्डितों का मिथ्या कौटिल्य क्यों ? विभिन्नदेशीय श्रौत-स्मार्त्त धर्मग्रन्थों से किञ्चिदपि सम्बन्ध रखने वाले महानुभाव मैथिलों के श्राद्धादि में मत्स्यादि के प्रयोग को झुठलाने का प्रयास नहीं कर सकते ।

ये भट्ट उपाधि वाले प्राय: सभी द्राविड़ धर्मनिबन्धकार एक ही परिवार के विशिष्ट विद्वान् थे । सर्वत्र सम्पूज्य होते हुए भी सभी धर्मनिबन्धों के क्षेत्रविशेष विभक्त होते हैं । आचारमयूख के उपोद्घात में ही लिखा है- ''बहुषु व्यवहारनिबन्धेषु सत्सु भट्टनीलकण्ठस्य प्रबन्ध आर्यदेशस्य पश्चिमभूभागे विशेषस्तत्र च श्रीपरशुरामक्षेत्रे गुर्जरदेशे त्वतीव प्रामाण्यतां गत:'' व्रतादि के विषय में नीलकण्ठ के भगवन्तभास्करादि गुर्जरप्रदेश में विशेष प्रामाणिक माने जाते हैं । महामहोपाध्याय पण्डित श्रीगङ्गानाथ झा ने 'हिन्दूधर्मशास्त्र' में लिखा है- ''नीलकण्ठ के चचेरे भाई कमलाकर भट्ट के निर्णयसिन्धु, धर्मतत्त्व आदि महाराष्ट्र प्रदेश में सबसे अधिक प्रामाणिक माने जाते हैं ।''

श्रीकमलाकर भट्ट ने बङ्गीय धर्मनिबन्धकार जीमूतवाहन का प्रचुर खण्डन किया है । स्वाभाविक है, बङ्गीय गौड़ निर्णयसिन्धु आदि का खण्डन ही करेंगे; ग्रहण नहीं । धर्मसिन्धु के प्रस्तावनाकार महामहोपाध्याय सदाशिवशास्त्री मुसलगाँवकर ने लिखा है- ''धर्मसिन्धु दक्षिणभारत में परम प्रामाणिक माना जाता है ।'' यद्यपि दायभाग एवं मिताक्षरा का सम्मान व्यापक है तथापि ये क्रमेण बङ्ग और बङ्गेतर भारत में विशेष व्यवस्थापित हैं ।

नृसिंहप्रसादकार दलपति ने चार उपसम्प्रदायों की चर्चा की है- काशी, महाराष्ट्र, द्रविड़ और मिथिला । उन्होंने काशीक्षेत्र के स्वकीय धर्मनिबन्धों की अनुपलब्धता को देख काशीसम्प्रदाय के लिए वीरमित्रोदय, निर्णयसिन्धु, दत्तकमीमांसादि को रख दिया है (यद्यपि निर्णयसिन्धु आदि में काशीक्षेत्र के पञ्चाङ्ग या आसपास होने वाले जीवत्पुत्रिका, छठ आदि अनेक पर्वोत्सवों की सामान्य चर्चा भी नहीं है), तथापि अन्यान्य आम्रेड़ित धर्मविचारों के लिए इनकी प्रामाणिकता में बाधा नहीं । महाराष्ट्र के लिए विवादताण्डव, मयूख, वीरमित्रोदयादि को ग्राह्य बताया है । द्रविड़ों के लिए स्मृतिचन्द्रिका, पराशरमाधवादि और मिथिला के लिए विवादचिन्तामणि, विवाद रत्नाकर आदि को । ज्ञातव्य- ये विभाग दायभागादि के हैं, व्रतादि के लिए उपर्युक्त विवेचन ही संग्राह्य हैं ।

सज्जनो ! धर्मशास्त्र ही सम्पूर्ण सनातनसमाज का सर्वश्रेष्ठ शास्ता या संचालक है । इस लोकोत्तर संविधान को प्रौढ़तम गुरुपरम्परा से समझना अत्यावश्यक है । अमुकामुक व्रतोपवासादि के निर्णय में ''वर्षमध्ये दिनद्वयम्'' वाले अपारम्परिक धर्मशास्त्रियों को उत्पात फैलाने से बचना चाहिए । सबके विषयविभाग बँटे हैं, अनधिकृत चञ्चुचालन सही नहीं । विषयाधिकारसम्पन्न बनने का प्रयास करना चाहिए । कहीं किसी परम्परा से स्वमनोनुकूल कोई श्लोक या वाक्य ढूँढ़ कर निर्णय बाँट देना उपयुक्त नहीं । ''धर्मं च धर्मशास्त्रं च रक्ष रक्ष महामते'' धर्म और धर्मशास्त्र की रक्षा करें । ''सीतारामोऽव्यात्'' भगवान् श्रीसीताराम सबका मङ्गल करेंगे ।

॥ श्रीराम जय राम जय जय राम ॥